''वर्मा जी का इतिहास - लेखन : एक मूल्यांकन''

साहित्येतिहास की मूल अवधारणा, इतिहास पर ही आधारित होती है । इतिहास की धारणाएँ ही ''साहित्य के इतिहास'' की दिशा-निर्देश करती हैं ।

डॉ. गुलाबराय के शब्दों में - (साहित्य का इतिहास सन् सम्वत् सहित कवियों की नामावली नहीं है । कवि के मानस - लोक का अध्ययन करने के लिए उसके युग की प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ता है तभी हम जान सकते हैं कि कोई कवि कहाँ तक अपने समय की प्रवृत्तियों का प्रतिफलन मात्र है, और कहाँ तक उसने उन प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया है

वस्तुतः यह जीवनधारा जो व्याकुल प्रतिकूल अवस्थाओं में बहती हुई हमारे अन्तस् में सतत् प्रवाहित रहती है, उसको समझने के लिए हम साहित्य का इतिहास पढ़ाते हैं । यह इतिहास हमारी उन मनोभावनाओं का इतिहास है, जो समय-समय पर अपने परिवर्तित और नूतन परिवेश से साहित्य कला को संवारने में योग देती हैं । आरम्भ में किसी भी साहित्य की धारा का वेग बहुत क्षीण होता हैं, किन्तु समय के साथ - साथ उसमें व्यापकता और विस्तार की सम्भावनाएँ बनी रहती है । किसी भी देश का साहित्य वहाँ के जीवन का जीवन्त इतिहास होता है । अपने विचारों एवं अनुभूतियों की निधि के संचयन में जनमानस साहित्य के अध्ययन से अपेक्षित सहायता प्राप्त करता है । हिन्दी साहित्य को लिपिबध्द करने का प्रयास वस्तुतः १२ बीं शती के पूर्व समुचित से नहीं हो पाया । कतिपय ग्रन्थ यदि इस सन्दर्भ में मिलते भी हैं, तो उनमें लेखक का दृष्टिकोण साहित्य के मूल्यांकन का नहीं दीखता । मासी द तासी से लेकर आचार्य शुक्ल तक और आचार्य शुक्ल से अब तक जो हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री उपलब्ध है उसे मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

१. शुक्ल - पूर्व युग २. शुक्ल - युग ३. शुक्लोत्तर युग

आचार्य शुक्ल पूर्व युग से हमारा तात्पर्य हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास ग्रन्थों से है । इन इतिहास ग्रन्थों में मुख्य रूप से गासदि तासी का इस्त्वार दला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी, शिवसिंह सेगंर का शिवसिंह सरोज, डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन का द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दोस्तान, और मिश्रबन्धु का मिश्रबन्धु विनोद उल्लेनीय हैं ।

साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि से शुक्ल युग महत्वपूर्ण युग है । इस युग में अनेक प्रसिध्द इतिहास - ग्रन्थ लिखे गये हैं । इनमें आचार्य शुक्ल का "हिन्दी साहित्य का इतिहास" रसाल (रमाशंकर रामशंकर) शुक्ल)2 का हिन्दी साहित्य का इतिहास, सूर्यकान्त शास्त्री का हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, श्यामसुन्दरदास का हिन्दी साहित्य और रामकुमार वर्मा का "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" आदि उल्लेखनीय इतिहास ग्रन्थ हैं ।

इन सब में सर्वप्रमुख व्यक्ति आचार्य शुक्ल ही थे । सर्वप्रथम उन्होंने साहित्येतिहास लेखन को एक नवीन रूप दिया । कविताओं के नमूने और कवियों के परिचय के संकुचित क्षेत्र से उसे निकालकर उसकी वास्ताविक महत्ता अथवा गारिमा प्रदान की । रचनाकारों की रचना - सामार्थ्य का अधिक से अधिक उद्‌घाटन किया और यह सोचने समझने की हष्टि दी कि हिन्दी साहित्य का अपना भी इतिहास है, जिसकी एक सुदीर्घ परम्परा है ।

शुक्ल-युगीन इतिहास लेखन में दूसरा महत्वपूर्ण नाम आता है, रामकुमार वर्मा जी का ।

आचार्य शुक्ल के इतिहास के नौ वर्ष पश्चात, वर्मा जी ने अपना (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) लिखा । प्रस्तुत इतिहास वर्मा जी का शोध प्रबन्ध है । प्रबन्ध के मुद्रित रूप पर ही सन् १२४० ई. में आप को नागपूर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि मिली । इस ग्रन्थ में हिन्दी साहित्य केवल दो कालों (सन्धिकाल, चारणकाल, और भक्तिकाल, पर ही विस्तारपूर्वक विचार किया गया है ।)3

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९३८ में रामनारायण लाल वेनीमाधव इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है । इस इतिहास ग्रन्थ की लोकप्रियता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसके अब तक छः संस्करण निकल चुके हैं । साहित्येतिहास - लेखन की पहली शर्त है इतिहास दृष्टि की । अर्थात जब भी इतिहास लेखक किसी भी विषय का इतिहास लिखता है तो उसके पीछे उसका दृष्टिकोण भी काम करता है । इसके अभाव में कोई भी इतिहास नहीं लिखा जा सकता है ।

वर्मा जी का भी इतिहास लिखने का अपना हष्टिकोण है । वे ग्रन्थ के निवेदन में अपना हष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं । (साहित्य का इतिहास आलोचनात्मक शैली में अधिक स्पष्ट किया जा सकता है । अतः ऐतिहासिक सामग्री के साथ कवियों एवं साहित्यि प्रवृत्तियों की आलोचना करना मेरा हष्टिकोण)4 उपयुक्त उध्दरण से निम्नलिखित विचार सूत्र उपलब्ध होते हैं, जो वर्मा जी के इतिहास लेखन के मूलाधार हैं ।

१. साहित्य का इतिहास आलोचनात्मक शैली में अधिक स्पष्ट किया जा सकता है ।

२. ऐतिहासिक तथ्यों का भी ध्यान रखा गया है ।

३. कवियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की आलोचना करना मुख्य उद्देश्य रहा है ।

अब यहाँ देखना है कि वर्मा जी ने अपने हष्टिकोण को इतिहास लेखन में कहाँ तक कार्यान्वित किया है । वर्मा जी ने अपने इतिहास में ऐतिहासिक सामग्री के साथ ही साथ कवियों और साहित्यिक प्रवृत्तियों की आलोचना भी की है । इसके लिए उन्होंने आलोचनात्मक शैली का सहारा लिया है । वर्मा जी के इतिहास के पूर्व जितने भी हिन्दी के साहित्येतिहास लिखे गये उनमें आलोचनात्मक हष्टिकोण का अभाव पाया जाता है । वर्मा-पूर्व सभी इतिहास ग्रन्थ विवरण प्रधान थे, जैसे तासी शिवसिंह सरोज, और ग्रियर्सन के इतिहास ग्रन्थ । इन सभी इतिहास ग्रन्थों में कवियों का संक्षिप्त परिचय और उनके काव्य के उदारहण मात्र दिए गए हैं। शुक्ल जी के इतिहास में अवश्य आलोच्य - हष्टि के दर्शन होते है, परन्तु वह भी परियचात्मक तौर पर ही उसमें शुक्लजी का आलोचकत्य नहीं बल्कि इतिहास लेखक का रूप अधिक उभर कर आया है । इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि इतिहास की पुस्तक में किसी कवि की पूरी क्या अधूरी आलोचना भी नहीं आ सकती है ।

सम्भवता:, पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थों की इसी कमी को पूरा करने के लिए इतिहास को अपने शोध का विषय बनाया और उसका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया ।

अब हमें इस पर विचार करना है कि इस इतिहास को आलोचनात्मक इतिहास क्यों कहा गया है । इस का उत्तर स्पष्ट है कि सबसे पहले यह शोध ग्रन्थ है । शोध और आलोचना का चोलीदामन का साथ रहता है । शोध के बिना आलोचना निर्जीव होता है ।

शोध ग्रन्थ में, कवियों और उनकी रचनाओं प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का केवल परिचय मात्र से काम नहीं चला सकते हैं । इसके लिए इतिहास-लेखक को आलोचना का सहारा लेना पड़ता है । अर्थात जितनी भी समग्री उसके सामने है उसकी जाँच पड़ताल करनी पड़ती है तथा अन्त में अपना मत भी व्यक्त करना पड़ता है । इन विषयों को स्पष्ट करने के लिए आलोचनात्मक शैली ही सहायक हो सकती है । सामग्री की हष्टि से साहित्येतिहास लेखन में तीन तत्वों का स्पष्टीकरण होना आवष्यक होता है । सामग्री संकलन एवं तथ्यों का चुनाव, सामग्री की परीक्षा एवं समीक्षा तथा पठनीय रूप में तथ्यों का प्रस्तुतीकरण, व्याख्या तथा उनके नितकर्ष ।

इन तीन तत्वों में से यदि एक भी अपूर्ण है तो किसी भी इतिहास-ग्रन्थ को पूर्ण नहीं माना जा सकता है ।

सामग्री का संकलन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है । यह शोधात्मक और सैद्धान्तिक भी

है । साहित्येतिहास लेखन के लिए विपुल सामग्री की आवश्यकता होती हैं जिसे इतिहास लेखक वर्षों की खोज के बाद एकत्र करता है । इसके लिए वह पूर्ववर्ती विद्वानों के अनुसन्धानपर भी अश्रित होता है क्योंकि समस्त सामग्री की मौलिक खोज तथा उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा एक विद्वान द्वारा सम्भव नहीं है ।

सामग्री संकलन की दृष्टि से वर्मा जी का इतिहास एक आदर्श इतिहास है । सबसे पहली बात तो यह है कि यह शोध ग्रन्थ है और इसमें इतिहास लेखक की शोध प्रवृत्ति काम कर रही है । इसी लिए वर्मा जी ने अपने समय की उपलब्ध सभी सामग्री का उपयोग किया है । इस सन्दर्भ में डॉ. सुमनराज का कहना है कि इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक जितनी सामग्री शोध द्वारा प्रकाश में आई थी, सबका उपयोग डॉ. वर्मा ने किया है । विभिन्न सम्प्रदायों के दार्शनिक, सिध्दान्तों को बड़े ही सुलभ ढंग से प्रस्तुत किया है)

साहित्य के इतिहास लेखन के लिए जिस सामग्री का चूनाव किया जाता है उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा, तथा विश्वसनीयता, प्रामाणिक इतिहास निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है । पूर्ववर्ती इतिहास कारों द्वारा जो सामग्री प्राप्त होती है उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा भी की जाती है क्यों कि नवीन अनुसन्धान के फलस्वरूप तथ्यों का चेहरा मोहरा बदल जाता है । कई प्रामाणिक समझे जाने वाले तथ्य अप्रामाणिक सिध्द हो जाते हैं । इस सन्दर्भ में वीरगाधात्मक ग्रन्थों को लिया जा सकता है । जिन ग्रन्थों का उल्लेख हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग में होता रहा है, उनमें से बहुत से ग्रन्थ परवर्ती युग के सिध्द हो चुके हैं ।

इस दृष्टि से वर्मा जी का इतिहास लेखन वैज्ञानिक है । उन्होंने जो भी सामग्री अपने स्पष्टीकरण के लिए ली है, उसकी ठोक पीटकर जाँच कर ली है, तब वे किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और अपना मत व्यक्त करते हैं । जैसे चारणकाल में चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर विस्तार से प्रकाश डाला है । वर्मा जी ने सबसे पहले रासों की उपलब्ध सात प्रतियों के विषय में स्पष्टिकरण दिया है । इसके पश्चात इन्हीं प्रतियों के आधार पर, संक्षेप उसकी कथा पर प्रकाश डाला! इसी सन्दर्भ में इसी से मिलती जुलती जगनिक कृत पृथ्वीराज विजय का सविस्तार परिचय दिया है । इसके पश्चात इतिहासिक घटनाओं के सन्दर्भ में भी रासो का विश्लेषण किया है । उसमें इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ पाई गई हैं । श्यामसुन्दर दास, मिश्रबन्धु और ओझा जी के विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए अन्त में वर्मा जी इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अपना विचार प्रस्तुत करते हैं ।

वे इस ग्रन्थ की प्रशांसा करते हुए भी इसे अप्रामाणिक सिध्द करते हैं ।6 इसके पक्ष

में वे कुछ तर्क देते हैं । वे तर्क इस प्रकार हैं।

१. रासों के कुछ पात्र और घटनाएँ, इतिहास से मेल नहीं खाती हैं । उदाहरणार्थ समरसी पात्र और पृथ्वीराज की बहन पृथा पात्र का विवाह भी इतिहास विरुध्द घटना है । समरसी, पृथ्वीराज चौहान के सौ वर्ष पश्चात हुए थे । फिर यह विवाह कैसे हो सकता है ।

२. भाषा की दृष्टि से भी रासो अप्रामाणिक रचना है ।

३. रासो में अनेक वन्दनाएँ हैं जैसे शिव स्तुति, ईस्वर स्तुति, देवी स्तुति और सूर्य स्तुति आदि । लेकिन इस समय के अन्य ग्रन्थों में कोई भी स्तुति नहीं है । चन्द जैसे कवि का प्रभाव, समकालीन कवियों पर पड़ना स्वाभाविक था ।

४. रासो के प्रारम्भ में ईश्वर की वन्दनाकरने के बाद चन्द पहले तो ईस्वर को निराकार और निर्गुण कहते हैं, बाद में बे उसी ब्रहम को ब्रहमा के रूप में परिवर्तित कर देते है । आगे चलकर दशावतार की कथा कही गई है । चन्द जैसे महाकवि क्या इतनी छोटी सी भूल कर सकता है

अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ''रासो'' को प्रामाणिक ग्रन्थ सिध्द करने की सामग्री बहुत ही कम है आज तक की सामग्री के सहारे ''रासो'' को प्रामाणिक ग्रन्थ आदर्शों की उपेक्षा करना है ।

सामग्री के संकलन तथा उसके परीक्षण के पश्चात उनका प्रस्तुती करण, इतिहास लेखन की दूसरी प्रमुख विशेषता है । हिन्दी साहित्येतिहास लेखन को व्यवस्थित तथा तर्क संगत रूप प्रदान करने के लिए आचार्य शुक्ल ने सामाग्री के प्रस्तुतीरकण की जो योजना बनाई थी, वह इतनी प्रभावशाली सिध्द हुई कि अन्य इतिहास लेखकों ने भी उसी को मान्यता प्रदान की । यह योजना इस प्रकार है ।

१. साहित्यिक सामग्री का वर्गीकरण तथा काल-विभाजन ।

२. युग का सामान्य परिचय तथा युगीन परिस्थिति का विवेचन ।

३. युग की प्रमुख साहित्य धाराओं का वर्णन तथा विश्लेषण ।

४. प्रत्येक धारा के प्रवर्तक तथा प्रतिनिधि लेखकों का साहित्यिक परिचय ।

५. लेखकों की प्रमुख कृतियों का संक्षेप में मूल्यांकन तथा अन्य कृतियों की सूचना

६. गौण लखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची ।

७. प्रसिध्द रचनाओं के उदारहण ।

उपर्युक्त तत्वों के आधार पर वर्मा जी के इतिहास-लेखन का मूल्यांकन करना होगा।

८. वर्मा जी ने सामग्री के वैज्ञानिक वर्गीकरण के लिए उसे कुछ कालों में विभाजित किया है । वर्मा जी का काल विभाजन इस प्रकार है ।

१.सन्धिकाल सवत् ७५० - १०००
२. चारणकाल " १००० - १३७५
३. भक्तिकाल " १३७५ - १७००
४. रीतिकाल " १७०० - १९००
५. आधुनिक काल सवत् १९०० - से अब तक। १९३८ प्रस्तुत काल विभाजन राजनीतिक उलट फेर के परिणाम स्वरूप हुआ है । मुसलमानों के आक्रमण फल स्वरूप सन्धिकाल और चारण काल का प्रादुर्भाव हुआ। संवत् १३७५ के उपरान्त अशांति । हिन्दू-मुस्लिम प्रतिद्धन्दिता के वातावरण के फलस्वरूप भक्तिकाल संवत् १७०० के बाद हिन्दू - मुस्लिम मेल-भावना और विलासिता का युग आया, इसको रीतिकाल के नाम से पुकारा गया । अंग्रेजी राज्य और क्रान्ति के बाद एक नवीन परम्पराओं के युग का आविर्भाव हुआ जिसे आधुनिक काल की संज्ञा दी गई । वैसे तो आपके काल विभाजन में कोई नवीनता हष्टिगत नहीं होती है । यह काल विभाजन पूर्ण रूप से शुक्ल जी के काल विभाजन पर ही टिका सा है । केवल थोड़ा कालों के नामकरण और तिथियाँ में परिवर्तन कर दिया गया परन्तु इतना अवश्य है कि वे जानते थे कि काल विभाजन के बिना बैज्ञानिक इतिहास लेखन असम्भव है।

१. प्रत्येक काल के विवेचन में एक वैज्ञानिक क्रम को अपनाया गया है । आरम्भ में प्रत्येक काल का सामान्य परिचय तथा परिस्थितियों का विवेचन किया गया है । सामान्य परिचय के अन्तर्गत काल के नामकरण पर विचार किया गया है । अर्थात सन्धिकाल चारणकाल या भक्तिकाल नाम कितने सार्थक हैं । जैसे भक्तिकाल की अनुक्रमणिका शीर्षक के अन्तर्गत पहले इस पर विचार किया गया है कि किन कारणों से भक्तिकाल का उदय हुआ। तत्पश्चात चारों काव्यधाराओं (सन्त काव्य प्रेमकाव्य, रामकाव्य और कृष्ण काव्य) का परिचय विस्तार से दिया गया है ।

परन्तु वर्मा जी अपने इतिहास में इस वैज्ञानिक क्रम का निर्वाह उचित रूप से नहीं कर पाये हैं । जैसे सन्धिकाल का सामान्य परिचय तो दिया गया है । जब कि चारणकाल का परिचय, प्रारम्भ में नहीं दिया गया है ।

३. इतिहास में प्रमुख साहित्यधाराओं और दार्शनिक सिध्दान्तों का विश्लेषण भी किया गया है । जब वे किसी साहित्य धारा या दर्शन पर विचार करते हैं तो उसकी परम्परा का एक चित्र सा खीच देते हैं । इससे पता चलता है कि किसी धारा या दर्शन की परम्परा का मूल क्या है ? और किस प्रकार उस परम्परा का विकास हुआ ? जैसे राम और कृष्ण काव्य के सन्दर्भ में वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा और विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

वर्मा जी ने वैष्णव धर्म का आदि रूप विष्णु के देवत्व में दिखलाया है । उसके पश्चात ऋग्वेद, ब्राहमण ग्रन्थों (शतपथ ब्राहमण, ऐतरेय ब्राहमण) निरुक्त, रामायण महाभारत और

भागवत पुराण में विष्णु के विभिन्न रूपों को दर्शाया है । नौवीं शदी में यह (वैष्णव धर्म) शंकराचार्य के अद्वैतवाद के सम्पर्क में आया, वहाँ भी इसे संघर्ष करना पड़ा । २२ वीं शदी में रामानुजाचार्य जी के द्वारा इसका और परिष्कार हुआ । निम्बार्क ने विष्णु को कृष्ण रूप में चित्रित किया और इसके साथ ही राधाको भी जोड़ दिया । रामानन्द ने विष्णु के रामरूप का प्रचार किया और भाक्ति को महत्व दिया। १३ वीं शदी में बल्लभाचार्य जी ने कृष्ण और राधा के प्रेमा का निरुपण किया । चैतन्य महाप्रभु ने राधाकृष्ण के प्रेममार्ग को और प्रशस्त किया। वर्मा जी के शब्दों में (वैष्णव धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में प्रथमतः''. व्यक्त होकर उत्तर भारत में वृध्दि पाने लगा । इस धर्म का प्रचार करने में चार महान् आचार्यों ने सहयोग दिया । रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य विष्णुस्वामी और निम्बार्क । इसके पश्चात कुछ आचार्य और हुए जिन्होंने वैष्णव धर्म को अधिक व्यापक बना दिया । वे थे रामानन्द और बल्लभाचार्य जी । वैष्णव धर्म को अनेक प्रकार से समझने के लिए प्रत्येक आचार्य ने भिन्न - भिन्न रूप से विष्णु के रूप की विवेचना की । रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत वाद, मध्वाचार्य ने द्वैत, निम्बर्क ने द्वैताद्वैत और बल्लभाचार्य ने शुध्दा द्वैतवाद की स्थापना की)

इन सभी दार्शनिक सिध्दान्तों पर प्रकाश डाला गया है । लेकिन इसी के साथ ही एक बात खटकती है कि इस इतिहास में शंकराचार्य जी के अद्वैतवाद पर प्रकाश नहीं डाला गया है। हो सकता है कि इस सन्दर्भ ने इतिहास लेखक की व्यक्तिगत रुचि या पूर्वग्रह काम कर रहा है। वर्मा जी के इतिहास - लेखन का मुख्य लक्ष्य है - कवियों और उनकी रचनाओं की आलोचना करना ।

कवियों और उनकी रचनाओं में निम्न पध्दति अपनायी गई है ।

१. कवि की ऐतिहासिकता की परीक्षा
२. कवि का प्रामाणिक जन्म एवं मृत्यु समय (तिथि)
३. कवियों की रचनाओं का परीक्षण
४. काव्य-गत विशिष्टताएँ (१) विषयगत विशेषगताएँ (२) भाषागत विशेषताएँ
५. कवि महत्व ।

इस सन्दर्भ में उन्होंने कवियों की जन्म तिथि, जन्मस्थान और जीवन चरित्र आदि को प्रामाणिक खोज के लिए अन्तःसाक्ष्य और वाहय साक्ष्य दोनों का सहारा लिया है । उन्होंने इस सामग्री की प्रामाणिकता की जाँच पड़ताल भी की । इसके पश्चात ही किसी कवि के विषय में अपना मत दते हैं ।

पृथ्वीराजरासो कबीर, सूर, तुलसी आदि कवियों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है । कवियों की प्रामाणिक जीवनी के सन्दर्भ में तालिकाओं और रेखा चित्रों का भी प्रयोग किया है जैसे कबीर और सिकन्दरलोदी के समय में

विभिन्न इनिहासकारों के मतों को तालिका के मध्यम से दिखाया गया है ।

इतिहासकार - ग्रन्थ - कबीर का समय - सिकन्दरलोदी समय

ईश्वरी-न्यू हिस्ट्री-ईसा की- सन् 1488-1596

प्रसाद - ऑव इण्डिया - पंद्रहवी शताब्दी -

इसके लिए कबीरपंथी ग्रन्थ, अकतमाल, आईन - ए - अकबरी और कबीर साहिब जी की परचई "आदि स्रोत ग्रन्थों से सहायता लेकर कबीर से सम्बन्धित प्रामाणिक निष्कर्ष निकाले गये हैं । संधिकाल साहित्य को रेखाचित्र में माध्यम से दिखाया गया है ।

इस इतिहास में कवियों और उनकी रचनाओं की आलोचना में सन्तुलन और वैज्ञानिकता का सर्वत्र ध्यान नहीं रखा गया है । जैसे चारण काल के अन्तर्गत "पृथ्वीराज रासो" ग्रन्थ का प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को लेकर पूर्ण आलोचना की गई । लेकिन उसके रचयिता चन्दबरदाई के विषय में लेखक मौन है । इसी प्रकार प्रेम-काव्य के अन्तर्गत भी कवियों की अपेक्षा उनकी रचनाओं की आलोचना की ओर ही लेखक का ध्यान अधिक है । इतिहास - लेखन की दृष्टि से प्रवृत्तियों का विवेचन भी महत्व पूर्ण है । इस दृष्टि से यह इतिहास सफल इतिहास कहा जा सकता है । इसमें संधिकाल चारणकाल और भक्तिकाल की प्रवृतियों का विश्लेषण किया गया है । ग्रन्थ के अन्त में रीतिकालीन प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक प्रस्तुतीकाल की योजना में वर्मा जी ने एक नवीनता लाने का प्रयत्न किया है । प्रत्येक काव्य धारा के विवेचन के पश्चात "सिंहावलोकन" शीर्षक के अन्तर्गत संक्षेप में पुनः विचार किया गया है । यह विचार वर्ण्य प्रवृत्तियों से सम्बन्धित भाषा, छन्द तथा रस से सम्बन्धित है । इसके पूर्व के इतिहास लेखन में वह विशेषता देखने को नहीं मिलती है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस दृष्टि से वर्मा जी ने आलोचनात्मक इतिहास लिखा है । इसमें वर्मा जी पूर्ण सफल हुए और उन्होंने इतिहास - लेखन के क्षेत्र में एक नयी दिशा देने का प्रयास किया हैं ।

डॉ० इशरत खान
प्राध्यापक (हिन्दी)
गोवा विश्वविद्यालय